सत्यमेव जयते

भारत सरकार

Law Commission of India
LIBRARY

भारत

का

विधि

आयोग

निर्धनों के भाग्य को सुधारने की आवश्यकता – उच्चतम न्यायालय के निर्णय

रिपोर्ट सं. 223

अप्रैल, 2009

भारत का विधि आयोग

(रिपोर्ट सं. 223)

निर्धनों के भाग्य को सुधारने की आवश्यकता – उच्चतम न्यायालय के निर्णय

डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन, अध्यक्ष, भारत का विधि आयोग द्वारा केन्द्रीय विधि और न्याय मंत्री, विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार को 30 अप्रैल, 2009 को अग्रेषित ।

18वें विधि आयोग का गठन भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय, विधि कार्य विभाग, नई दिल्ली के आदेश संख्या ए.45012/1/2006-प्रशा. III (एल ए) तारीख 16 अक्तूबर, 2006 द्वारा 1 सितम्बर, 2006 से तीन वर्ष के लिए किया गया ।

विधि आयोग अध्यक्ष, सदस्य-सचिव, एक पूर्णकालिक सदस्य और सात अंशकालिक सदस्यों से मिलकर बना है ।

अध्यक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डा. एआर. लक्ष्मणन, अध्यक्ष

सदस्य-सचिव

डा. ब्रह्म ए. अग्रवाल

पूर्णकालिक सदस्य

प्रोफेसर (डा.) ताहिर महमूद

अंशकालिक सदस्य

डा. (श्रीमती) देविन्दर कुमारी रहेजा

डा. के. एन. चन्द्रशेखरन पिल्लै

प्रोफेसर (श्रीमती) लक्ष्मी जामभोलकर

श्रीमती कीर्ति सिंह

न्यायमूर्ति आई. वेंकटनारायण

श्री ओ. पी. शर्मा

डा. (श्रीमती) श्यामला पप्पू

विधि आयोग आई. एल. आई. बिल्डिंग, द्वितीय तल, भगवानदास रोड, नई दिल्ली-110001 में स्थित है ।

विधि आयोग के कर्मचारिवृंद

सदस्य-सचिव

डा. ब्रह्म ए. अग्रवाल

अनुसंधान कर्मचारिवृंद

श्री सुशील कुमार	:	संयुक्त सचिव और विधि अधिकारी
सुश्री पवन शर्मा	:	अपर विधि अधिकारी
श्री जे. टी. सुलक्षण राव	:	अपर विधि अधिकारी
श्री ए. के. उपाध्याय	:	उप विधि अधिकारी
डा. वी. के. सिंह	:	सहायक विधि सलाहकार
डा. आर. एस. श्रीनेट	:	अधीक्षक (विधि)

प्रशासनिक कर्मचारिवृंद

श्री सुशील कुमार	:	संयुक्त सचिव और विधि अधिकारी
श्री डी. चौधरी	:	अवर सचिव
श्री एस. के. बसु	:	अनुभाग अधिकारी
श्रीमती रजनी शर्मा	:	सहायक पुस्तकालय और सूचना अधिकारी

इस रिपोर्ट का पाठ **http://www.lawcommissionofindia.nic.in** पर इन्टरनेट पर उपलब्ध है ।

© भारत सरकार

भारत का विधि आयोग

इस दस्तावेज का पाठ (सरकारी चिह्न के सिवाय) इस शर्त के अधीन किसी प्ररूप या माध्यम में निःशुल्क पुनरुत्पादित किया जा सकता है बशर्ते कि यह ठीक-ठीक पुनरुत्पादित किया गया है और भ्रामक संदर्भ में प्रयोग नहीं किया गया है । सामग्री की अभिस्वीकृति भारत सरकार कापीराइट और विनिर्दिष्ट दस्तावेज के शीर्षक के रूप में की जाए ।

इस रिपोर्ट से संबंधित कोई पूछताछ सदस्य-सचिव, भारत का विधि आयोग, द्वितीय तल, आई. एल. आई. भवन, भगवानदास रोड, नई दिल्ली-110001, भारत को डाक द्वारा या ई-मेल : **lci-dla@nic.in** द्वारा संबोधित किया जाए ।

डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन
(भूतपूर्व न्यायाधीश, भारत का
उच्चतम न्यायालय)
अध्यक्ष, भारत का विधि आयोग

आई.एल.आई. भवन
(द्वितीय तल)
भगवान दास रोड,
नई दिल्ली-110001
दूरभाष- 91-11-22384475
फैक्स - 91-11-23383564

अर्ध. शा.सं. 6(3)/134/2007-एल सी(एल एस) 30 अप्रैल, 2009

प्रिय डा. भारद्वाज जी,

विषयः- निर्धनों के भाग्य को सुधारने की आवश्यकता – उच्चतम न्यायालय के निर्णय

मैं उपरोक्त विषय पर भारत के विधि आयोग की 223वीं रिपोर्ट को अग्रेषित कर रहा हूं ।

आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र समिति ने निर्धनता की परिभाषा जीवन के उपयुक्त स्तर और अन्य सिविल, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक अधिकारों के उपभोग के लिए आवश्यक संसाधनों, क्षमताओं, विकल्पों, सुरक्षा और शक्ति के अविच्छिन्न या चिरकालिक वंचन द्वारा चित्रित मानव दशा के रूप में की है । निर्धनता सन्निर्मित सामाजिक और आर्थिक वास्तविकता है और बनी रहती है । निर्धन मात्र इस कारण निर्धन नहीं हैं कि वे कम मानवीय हैं या इस कारण कि वे ऐसे लोग जो धनी हैं, से शारीरिक या मानसिक रूप से कमजोर हैं । दूसरी ओर, उनकी निर्धनता प्रायः उनके सामाजिक और आर्थिक संबंधों के आधार के रूप में निष्पक्षता और ऋजुता स्थापित करने की समाज की असफलता का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम हैं । परम निर्धनता मानव अधिकारों का वंचन है ।

निवासः सं. 1, जनपथ, नई दिल्ली-110001. टेली. 91-11-23019465, 23793488, 23792745. ई-मेल : ch.lc@sb.nic.in.

अधिकांश मामलों में, हमारे उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 21 की व्याप्ति पर विचार किया जो प्राण के अधिकार को आश्वस्त करता है । प्राण के अधिकार को सार्थक और प्रभावी बनाने के लिए उच्चतम न्यायालय ने व्यापक निर्वचन किया और अनेकों अधिकारों को इसकी परिधि के भीतर लाया ।

निर्धनता को समूल नष्ट करने के लिए विभिन्न विधियां अधिनियमित की गई हैं, उनमें से कुछ प्रत्यक्ष रूप से और कुछ अप्रत्यक्ष रूप से उनके बारे में हैं । इसके बावजूद, उनका अनिच्छुक क्रियान्वयन समस्या से प्रभावी रूप से निपटने में हमें काफी पीछे कर देता है ।

निर्धन और जरूरतमंद लोगों के पक्ष में संवैधानिक सुरक्षोपायों और राज्य विधायी हस्तक्षेप के बावजूद, उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति बिगड़ती जा रही है । सामाजिक और आर्थिक समानता अब भी उनके लिए मृगतृष्णा है ।

हमारा यह मत है कि संघ और राज्य सरकारें को हमारे उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों को उनके भाषा और भाव में क्रियान्वयन के लिए शीर्षस्थ प्राथमिकता देनी चाहिए जिससे कि निर्धन लोगों के भाग्य को सुधारा जा सके ।

सादर,

भवदीय,
(डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन)

डा. एच. आर. भारद्वाज,
केन्द्रीय विधि और न्याय मंत्री,
भारत सरकार, शास्त्री भवन,
नई दिल्ली-110001

निर्धनों के भाग्य को सुधारने की आवश्यकता –

उच्चतम न्यायालय के निर्णय

विषय सूची

	अध्याय	पृष्ठ सं.
1.	अत्यधिक निर्धनता : मानव अधिकारों का वंचन	9
2.	भिखारियों के मानव अधिकारों पर याचिका	18
3.	संविधान के अनुच्छेद 21 का विस्तार	21
4.	निष्कर्ष और सिफारिश	39

अध्याय – I

अत्यधिक निर्धनता : मानव अधिकारों का वंचन

1.1 आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र समिति ने निर्धनता की परिभाषा जीवन के उपयुक्त स्तर और अन्य सिविल, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक अधिकारों के उपभोग के लिए आवश्यक संसाधनों, क्षमताओं, विकल्पों, सुरक्षा और शक्ति के अविच्छिन्न या चिरकालिक वंचन द्वारा चित्रित मानव दशा के रूप में की है । निर्धनता सन्निर्मित सामाजिक और आर्थिक वास्तविकता है और बनी रहती है । निर्धन मात्र इस कारण निर्धन नहीं हैं कि वे कम मानवीय हैं या इस कारण कि वे ऐसे लोग जो धनी हैं, से शारीरिक या मानसिक रूप से कमजोर हैं । दूसरी ओर, उनकी निर्धनता प्रायः उनके सामाजिक और आर्थिक संबंधों के आधार के रूप में निष्पक्षता और ऋजुता स्थापित करने की समाज की असफलता का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम हैं । परम निर्धनता मानव अधिकारों का वंचन है [1]।

1.2 मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में यह उद्घोषणा[2] है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपने और अपने कुटुम्ब के स्वास्थ्य और भलाई के लिए उपयुक्त जीवन स्तर का हकदार है । फिर भी, मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अनुसार, अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदाएं यह मान्यता प्रदान करती हैं कि भय और अभाव से मुक्ति तभी प्राप्त की जा सकती है यदि प्रत्येक व्यक्ति सिविल और राजनैतिक अधिकारों के अलावा, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार का उपभोग करता हो । अमीरी और गरीबी के बीच बढ़ती असमानता विश्व में प्रमुख अस्थिरताकारी स्थिति है ।

---

[1] वायस आफ जस्टिस, डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन द्वारा, यूनिवर्सल ला पब्लिशिंग कं. प्रा. लि., दिल्ली (2006) पृष्ठ 121

[2] मानव अधिकारों के संयुक्त राष्ट्र आयोग के 49वें सत्र का कथन ।

यह क्षेत्रीय और राष्ट्रीय विरोध, पर्यावरणीय अवक्रमण, अपराध और हिंसा, तथा अवैध औषधियों के बढ़ते उपयोग को पैदा करता है या उत्तेजित करता है । अत्यधिक निर्धनता के ये परिणाम सभी व्यक्तियों और राष्ट्रों को प्रभावित करते हैं । धीरे-धीरे हम यह जानने लगे हैं कि हम सभी एक ही मानव परिवार के सदस्य हैं । कुटुम्ब में किसी सदस्य की वेदना को सभी व्यक्तियों द्वारा महसूस किया जाता है, और जब तक उस वेदना को समाप्त नही कर दिया जाता तब तक कुटुम्ब का कोई सदस्य पूर्णतः खुश या निश्चिंत नहीं रह सकता है । असफलता के संवेग को महसूस किए बिना कुछ लोग भुखमरी और अत्यधिक निर्धनता पर ध्यान देते रहते हैं ।

1.3 प्रत्येक पुरुष और महिला का स्वास्थ्य और तंदुरुस्ती के लिए भोजन, वस्त्र,मकान, चिकित्सा देखभाल और सामाजिक सेवा के उपयुक्त जीवन स्तर का मानव अधिकार है । इन मूल मानव अधिकारों की परिभाषा हमारे संविधान में दी गई है । 10 दिसम्बर, 1948 को, संयुक्त राष्ट्र साधारण सभा ने मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को "सभी लोगों और सभी राष्ट्रों के लिए उपलब्धि के एक समान स्तर के रूप में" स्वीकार किया और उद्घोषित किया । मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषण का अनुच्छेद 1 इस प्रकार है :–

> " सभी मानव प्राणी स्वतंत्र पैदा हुए हैं और उनकी गरिमा और अधिकार एक समान हैं । उनके पास तर्कशक्ति और अंतःकरण है और उन्हें भ्रातृत्व की भावना से एक दूसरे के प्रति कार्य करना चाहिए ।"

1.4 कमी से मुक्त गरिमामय जीवन का मानव अधिकार स्वयमेव मूल अधिकार है और सभी अन्य मानवीय अधिकारों – अर्थात् ऐसे अधिकार जो सार्वभौमिक, अविभाज्य, सहसंबद्ध और अन्योन्याश्रित हैं, की अनुभूति भी आवश्यक है । निर्धनता से मुक्त होने के अधिकार के अंतर्गत जीवन के उपयुक्त स्तर का मानव अधिकार सम्मिलित है । निर्धनता से मुक्त होने के अधिकार के अंतर्गत निम्नलिखित शामिल हैं :–

जीवन के उपयुक्त स्तर का मानव अधिकार ;

कार्य करने और मजदूरी पाने का मानव अधिकार जो जीवन के उपयुक्त स्तर में सहायक होता है ;

स्वास्थ्यप्रद और सुरक्षित पर्यावरण का मानव अधिकार ;

उपयुक्त मकान में रहने का मानव अधिकार ;

भुखमरी से मुक्त होने का मानव अधिकार ;

स्वच्छ पीने के पानी का मानव अधिकार ;

बीमारी की दशा में प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल और चिकित्सा उपचार का मानव अधिकार ;

मूलभूत सामाजिक सेवाओं को प्राप्त करने का मानव अधिकार ;

शिक्षा का मानव अधिकार ;

लिंग या जातिभेद से मुक्त होने का मानव अधिकार ;

ऐसे विनिश्चयों में भाग लेने का मानव अधिकार जो स्वयं और उसके समुदाय को प्रभावित करता हो ।[3]

1.5 बच्चों के मानव अधिकार के अंतर्गत उनके शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक विकास के लिए उपयुक्त वातावरण सम्मिलित है ।[4]

1.6 मानव अधिकारों की संगति में निर्धनता और अत्यधिक निर्धनता के प्रति बहुत कम ध्यान दिया जाता है ; दुर्भाग्यवश इसका कारण बिल्कुल सामान्य है । कोई निर्धन व्यक्ति मुश्किल से अस्तित्व में रहता है और नम्रतापूर्वक " निर्धन" अधिकारों का ही दावा कर सकता है । हम धीरे-धीरे निर्धन व्यक्ति को अपना हक खो देने वाले व्यक्ति के रूप में मानने के लिए

---

[3] पूर्वोक्त टिप्पण 1, पृष्ठ 121-122

[4] वही

अभ्यस्त हो गए हैं । जैसाकि अत्यधिक निर्धन व्यक्ति के लिए वे कतई अस्तित्व में नहीं रहते, अधिक से अधिक वे भिक्षादान का फायदा उठा सकते हैं । अधिकांश मामलों में, जो सहायता वे प्राप्त करते हैं, वह समाज से बहिष्कार का अतिरिक्त संकेत है जो उन्हे दोषी महसूस कराता है । लोक प्राधिकारी उनकी उपेक्षा करते हैं ।

1.7 निर्धनता और अत्यधिक निर्धनता एकमात्र इस देश में सीमित परिधीय आभास नहीं है । यह सार्वभौमिक है । निर्धनता प्रत्येक जगह बढ़ती जा रही है । अल्प विकसित देशों और शीघ्र ढांचागत परिवर्तन वाले देशों में यह आभास अधिक व्यापक पैमाने पर होता है, लेकिन धनी देशों में शिकार व्यक्तियों के लिए इसके समान गंभीर परिणाम हैं । जैसाकि हमने पहले कहा है, निर्धनता प्रत्येक जगह बढ़ रही है : अमीरी बढ़ने के साथ-साथ निर्धनता भी बढ़ती है । निर्धनता सभी मानव अधिकारों को अप्रवर्तनशील बना देता है । जीवन के युक्तियुक्त स्तर के अधिकार का अतिक्रमण सभी व्यक्तियों के अन्य मानक अधिकारों का अतिक्रमण करता है, चूंकि उनका पालन भौतिक रूप से और ढांचागत रूप से असंभव होता है । निर्धनता विभेद को बढ़ावा देती है चूंकि यह विशिष्टतया महिलाओं, बूढ़ों और अशक्त व्यक्तियों को प्रभावित करती है । फिर भी, अधिकांश मामलों में, अधिक निर्धन व्यक्ति अपने निजी अधिकारों को भी पहचानने में असमर्थ हैं और यह अतिक्रमण व्यष्टियों को उनके अस्थिर दैनिक अस्तित्व को पूर्णतया प्रभावित करता है बल्कि यह कुंडलीदार कई पीढ़ियों तक उनके संपूर्ण सामाजिक ताने-बाने में फंसाता है जिससे वस्तुतः बचना असंभव है । निस्संदेह, निर्धनता, सामान्यतः एक सामाजिक संबंध है जो इस प्रकार विधि का विषय है और जिसके समग्र तर्क को समझने की आवश्यकता है । निर्धनता अनिश्चितता की स्थिति है, जबकि अत्यधिक निर्धनता, विभिन्न प्रकार की अनिश्चितताओं का वलय है और प्रत्येक प्रकार चक्राकार प्रक्रिया में अन्य प्रभावों को बढ़ाती है जो पूरी तरह से व्यक्ति को नष्ट कर देता है ।

1.8 मूलतः, निर्धनता के प्रति मानव अधिकारों की सोच निर्धन को

सशक्त बनाने, उनके स्वतंत्रता के विकल्प को विस्तारित करने और उनके अपने जीवन की संरचना का सुधार करने के बारे में है । अन्तरराष्ट्रीय मानकीय ढांचा निर्धनों को मानव अधिकार प्रदान कर और दूसरों पर विधिक बाध्यताएं अधिरोपित कर उन्हें सशक्त करता है । अधिकारों और बाध्यताओं को उत्तरदायितव के प्रणाली से समर्थित किए जाने की अपेक्षा है, अन्यथा वे प्रदर्शन कला से अधिक कुछ नहीं रह जाते । तद्नुसार, निर्धनता निवारण का मानव अधिकार सोच बाध्यताओं पर बल देता है और यह अपेक्षा करता है कि सभी कर्तव्य धारक, जिसके अंतर्गत राज्य और अन्तर-सरकारी संगठन हैं, को अन्तरराष्ट्रीय मानव अधिकारों के संबंध में अपने आचरण के प्रति जवाबदेह होना चाहिए । भागीदारी के अधिकार का उपभोग पूर्णतः अन्य मानव अधिकारों की उपलब्धि पर आधारित है । यदि निर्धन व्यक्तियों को सार्थकतः भाग लेना है तो उन्हें निर्बंधन के बिना (संगम बनाने के अधिकार) संगठित होने, अबाध रूप से एकत्र होने के अधिकार की स्वतंत्रता होनी चाहिए और यह कहें कि भय के बिना (अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता) होनी चाहिए, उन्हें सापेक्ष तथ्यों (सूचना का अधिकार) की जानकारी होनी चाहिए और उन्हें अनिवार्य रूप से आर्थिक सुरक्षा और कल्याण (जीवन और सहबद्ध अधिकारों के युक्तियुक्त स्तर का अधिकार) के आरंभिक स्तर का उपभोग करना चाहिए । खुल्लमखुल्ला इसकी बहुत कम मान्यता है कि निर्धन व्यक्ति भी सूचना की कमी से ग्रस्त होते हैं । बारंबार निर्धन व्यक्ति सूचना, ऐसी सहायता, उनके अधिकार, कार्य के बारे में संपर्क जो उनके जीवन को प्रत्यक्षतः प्रभावित करते हैं, के कार्यक्रम के बारे में सूचना से अपने अलगाव का उल्लेख करते हैं ।

1.9 निर्धनता निर्विवादितः सभी मानव अधिकारों का सर्वाधिक प्रकट अतिक्रमण है और मानव जनसंख्या की अधिकतम संख्या की जीवन्तता के प्रति भय घटित करता है । क्योंकि निर्धनता अमीर और गरीब देनों देशों में एक समान बढ़ रही है इसलिए मानव अधिकारों और सामाजिक न्याय मुद्दों के प्रति निर्धनता के दृष्टिकोण की मान्यता बढ़ रही है । संयुक्त राष्ट्र की

साधारण सभा ने यह संकल्प पारित किया है कि अत्यधिक निर्धनता और समाज से बहिष्कार मानव गरिमा का अतिक्रमण गठित करता है (18 दिसम्बर 1992 को अंगीकृत मानव अधिकारों और अत्यधिक निर्धनता पर साधारण सभा संकल्प 53/146) । व्यापक अत्यधिक निर्धनता का अस्तित्व मानव अधिकारों के पूर्ण और प्रभावी उपभोग का निषेध करता है और कुछ स्थितियों में, जीवन के अधिकार के प्रति भय गठित कर सकता है । निर्धनता के प्रति मानव अधिकार आधारित सोच निर्धन लोगों को असंक्राम्य मूल अधिकार धारक के रूप में देखता है जिसका अनिवार्य रूप से सम्मान संरक्षण और संपादन करना चाहिए ।

1.10 यदि समाज में अन्याय और विभेद निर्धनता के मुख्य कारण हैं तो प्रभावी प्रचालनात्मक तंत्र के रूप में विकास के मानव अधिकार आधारित दृष्टिकोण की यह मांग है :–

– निर्णय लेने में भागीदारी और पारदर्शिता – यह पूरे विकास प्रक्रिया में भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु सभी पणधारियों की भागीदारी के लिए वातावरण सृजित करने हेतु राज्य और अन्य कर्त्ताओं के अधिकार और बाध्यता की विवक्षा करता है ;

– गैर-विभेद – इसमें यह विवक्षित है कि साम्या और समानता सभी अधिकारों की रक्षा करते हैं और विकास और निर्धनता कमी के लिए महत्वपूर्ण तत्व हैं ;

– सशक्तीकरण – इसमें अधिक पारंपरिक विकास क्षेत्रों में प्रगति करने के लिए विधिक और राजनीतिक कार्रवाई जैसे औजारों के उपयोग से लोगों के मानव अधिकारों के प्रयोग को सशक्त करना विवक्षित है ;

– कर्ताओं की जवाबदेही – इसमें मानव अधिकारों के संवर्धन, संरक्षण और संपादन के प्रति पब्लिक और प्राइवेट संस्थाओं और कर्ताओं की जवाबदेही विवक्षित है और उन्हें जवाबदेह ठहराया

जाना चाहिए यदि इनका प्रवर्तन न किया जाए ।

1.11 मानव अधिकार सभी लोगों के लिए है अर्थात् जितना निर्धनता और सामाजिक अलगाव में रहने वाले लोगों के लिए है उतना धनी और शिक्षित व्यक्तियों के लिए भी । अन्तरराष्ट्रीय विधि जातीयता, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक या अन्य राय, राष्ट्रीय या सामाजिक उद्भव, संपत्ति, जन्म या अन्य प्रास्थिति जैसे किसी आधार पर मानव अधिकारों के उपभोग में विभेद का प्रतिषेध करता है । " या अन्य प्रास्थिति" पद के निर्वचन के अंतर्गत व्यक्तिगत परिस्थितियां, व्यवसाय, जीवन शैली, लैंगिक उद्भव और स्वास्थ्य प्रास्थिति शामिल है । उदाहरणार्थ, एच आई वी और एड्स वाले लोग किसी अनुचित निर्बंधन के बिना अपने मूल स्वतंत्राओं के उपभोग के हकदार हैं ।

1.12 समानता की यह भी अपेक्षा है कि समाज के भीतर सभी व्यक्ति ऐसे उपलब्ध माल और सेवा जो मूलभूत मानव आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आवश्यक है, के समान पहुंच का उपभोग करते हैं । यह लोक प्राधिकारियों द्वारा विनियमित और संरक्षित किसी क्षेत्र में विधि या व्यवहार में विभेद का प्रतिषेध करता है । इस प्रकार, गैर-विभेद का सिद्धांत सभी राज्य की नीतियों और व्यवहारों, जिसके अंतर्गत स्वास्थ्य देखभाल, शिक्षा, सेवाओं की पहुंच, यात्रा विनियमन, प्रवेश अपेक्षा और आप्रवासन से संबंधित है, को लागू होता है ।

1.13 अन्तरराष्ट्रीय मानव अधिकार ढांचे का आवश्यक सिद्धांत यह है कि सभी व्यक्ति और सभी लोग सिविल, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विकास जिससे मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्राओं को चरितार्थ किया जा सकता है, में भाग लेने, योगदान देने और उपभोग करने के हकदार हैं । इसका यह अभिप्राय है कि भागीदारी मात्र स्वामित्व या अविछिन्नता के दृष्टिकोण से कुछ वांछा करना नहीं है, बल्कि विकास क्रियाकलापों के डिजाइन और क्रियान्वयन के लिए व्यापक परिणामयुक्त अधिकार है । इसका विनिश्चय करने की प्रक्रिया से संबंध है और शक्ति के प्रयोग में

इसकी आलोचना भी की जाती है । भागीदारी और आवेशन के सिद्धांत का यह अर्थ है कि सभी लोग अपने अधिकतम क्षमता के साथ समाज में भाग लेने के हकदार हैं । तद्नुसार, यह लोगों को अपनी पूरी क्षमता और सृजनात्मकता का विकास करने और व्यक्त करने हेतु समर्थ बनाने के समर्थकारी वातावरण की व्यवस्थस करने की अपेक्षा करता है ।

1.14 राज्यों का ऐसा समर्थकारी वातावरण पैदा करने का प्राथमिक उत्तरदायित्व है जिसमें सभी लोग अपने मानव अधिकारों का उपभोग कर सकें और उन पर यह सुनिश्चित करने की बाध्यता हो कि मानव अधिकार मानकों और सिद्धांतों का सम्मान सभी स्तर के अभिशासन और नीति बनाने में समाहित है । जवाबदेही का सिद्धांत विकास के लिए वातावरण पैदा करना सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है । मानव अधिकार मात्र लोगों की आवश्यकता को परिभाषित नहीं करते बल्कि लोगों को सक्रिय जनता और दावा-धारक के रूप में मान्यता प्रदान करते हैं ; इस प्रकार, उन लोगों के कर्तव्यों और बाध्यताओं को स्थापित करना जो यह सुनिश्चित करने के उत्तरदायी हैं की आवश्यकताएं पूरी हो रही हैं । परिणामस्वरूप, कार्यक्रम विकास के अभिन्न भाग के रूप में कर्तव्यधारकों की पहचान एक लक्षण होना चाहिए ।

1.15 विधि को अनिवार्यतः अधिकारों का संरक्षण करना चाहिए । उनके बारे में किसी विवाद का निपटान किसी मनमाने स्वविवेक के प्रयोग द्वारा नहीं होना चाहिए बल्कि सक्षम, पक्षपातरहित और स्वतंत्र प्रक्रियाओं द्वारा न्यायनिर्णयन के माध्यम से होना चाहिए । ये प्रक्रियाएं सभी पक्षकारों के प्रति पूरी समानता और निष्पक्षता सुनिश्चित करेंगी और सर्वविदित और उद्घोषित स्पष्ट, विनिर्दिष्ट और पूर्व-विद्यमान विधियों के अनुसार प्रश्नों के उत्तर अवधारित करेंगी । विधि के समक्ष सभी व्यक्ति एक समान हैं और सभी व्यक्ति समान संरक्षण के हकदार हैं । विधि का नियम यह सुनिश्चित करता है कि कोई विधि से ऊपर नहीं है और यह कि मानव-अधिकार अतिक्रमणों के लिए दण्डमुक्ति नहीं होगी ।

1.16 मानव विकास परिप्रेक्ष्य से, सुशासन लोकतंत्रात्मक शासन है जिसका अभिप्राय इस प्रकार है :

- लोगों के अधिकारों और मूल अधिकारों का सम्मान किया जाए, और उन्हें गरिमा के साथ रहने की अनुज्ञा दी जाए ;
- ऐसे विनिश्चयों में लोगों की भूमिका होनी चाहिए जो उनके जीवन को प्रभावित करते हैं ;
- लोग नीति-निर्माताओं को जवाबदेह ठहरा सकते हैं ;
- अंतर्भाव और निष्पक्ष नियम, संस्थाएं और व्यवहार सामाजिक अन्योन्य-क्रियाओं को लागू करते हैं ;
- जीवन और विनिश्चय करने के सार्वजनिक क्षेत्रों में महिलाएं पुरुष के साथ समान भागीदार हैं ;
- लोग जातीयता, लिंग या किसी अन्य विशिष्टता पर आधारित विभेद से मुक्त हैं ;
- भावी पीढ़ियों की आवश्यकताएं वर्तमान नीतियों में प्रतिबिम्बित होता है ;
- आर्थिक और सामाजिक नीतियां लोगों की आवश्यकताओं और इच्छाओं के अनुकूल हैं ।

1.17 जातीयता, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनैतिक या अन्य राय, राष्ट्रीय या सामाजिक उद्भव, संपत्ति, जन्म या अन्य प्रास्थिति पर आधारित – लाखों विकास लक्ष्यों को पाने में विभेद के महत्व को बढ़ा-चढ़ा कर नहीं कहा जा सकता है । विभेद एक प्रकार का सामाजिक बहिष्कार है और प्रायः निर्धनता का कारण है । बहुत कम मामलों में, विभेद और बहिष्कार विरोध पैदा करते हैं । क्रमिक विभेद मानव विकास से लाभ उठाने और उसमें योगदान देने की व्यक्तियों की योग्यता को कम करता है ।

अध्याय – 2

भिखारियों के मानव अधिकारों पर एक याचिका

2.1 बाम्बे भिक्षा निवारण अधिनियम, 1959, जिसका विस्तार दिल्ली में है, के उपबंधों का अतिक्रमण करने में, भारत संघ, दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र सरकार और पुलिस आयुक्त, नई दिल्ली की अभिकथित कार्रवाई को चुनौती देते हए लोकहित वाद के द्वारा फाइल की गई संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन एक सिविल रिट याचिका (2000/117) उच्चतम न्यायालय के समक्ष लंबित है । रिट याची (सुश्री कर्णिका साहनी) जो दिल्ली विश्वविद्यालय की विधि छात्रा हुआ करती थी, ने "दिल्ली में भिखारियों की समस्या" विषय पर अनुसंधान कार्य अपने हाथों में लिया । उसने भिक्षुगृहों में रहने वाले ऐसे भिखारियों की दयनीय स्थिति देखी जो पर्याप्त भोजन, स्वच्छ जल, उचित आवास और व्यक्तिगत स्वास्थ्य जैसी जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं और सुविधाओं से वंचित थे । उसके अनुसार, रहने वाले लोग पर्याप्त पीने के पानी, स्नान, स्वच्छता, भोजन, कपड़ा और स्वच्छ बिस्तर या आश्रयस्थल के आसपास स्वस्थ वातावरण के किसी उचित व्यवस्था के बिना मात्र पशुवत जीवन बिता रहे हैं । लोगो ने अत्यधिक खराब चिकित्सा सुविधाओं की भी शिकायत की ।

2.2 रिट याचिका में यह इंगित किया गया है कि जीवन और आजीविका के अधिकार का अवधारण समग्र संवैधानिक ढांचे का भाग है और मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के विभिन्न अनुच्छेदों द्वारा भी यह मान्यता दी गई हे कि अन्य बातों के साथ-साथ, समाज के प्रत्येक सदस्य को उसके गरिमा और व्यक्तित्व के स्वतंत्र विकास के लिए आवश्यक आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों और बेरोजगारी के विरुद्ध सामाजिक सुरक्षा और संरक्षण का अधिकार है । यहां यह उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण है कि भिक्षावृत्ति की समस्या से निपटने के लिए

भिक्षावृत्ति निवारण के लिए एक स्कीम तैयार की गई थी और केन्द्रीय सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय द्वारा भिखारियों की देखभाल, उपचार और पुनर्वास के लिए 1992-93 के दौरान लागू की गई थी । संक्षेप में, इसके प्राथमिक उद्देश्यों का वर्णन करना आवश्यक है जो इस प्रकार हैं :–

1. भिखारियों की तकनीकी शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए सुविधाएं उपलब्ध कराना ;

2. भिखारियों को उत्पादन कार्यों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना जिससे कि वे समाज से पुनः जुड़ सकें ;

3. स्वैच्छिक कल्याण संगठनों को विकसित करना ;

4. प्रशिक्षण और रोजगार के लिए सामुदायिक संसाधनों को जुटाना ।

2.3 भिखारियों को व्यावसायिक प्रशिक्षण और तकनीकी शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए विद्यमान भिक्षु गृहों में कार्य केन्द्र की स्थापना सहायता की एक अन्य स्कीम का एक भाग था । यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि चूंकि भिक्षु गृहों के मामले में मुख्य उद्देश्य शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक पुनर्वास के साथ-साथ आर्थिक पुनर्वास है, इसलिए यह प्रत्याशा है कि व्यय का आबंटन इन उद्देश्यों के सापेक्ष महत्व को प्रतिबिम्बित करेगा, लेकिन जब इन निकायों के व्यय पैटर्न की परीक्षा इस परिप्रेक्ष्य में की जाती है तो यह पता चलता है कि कुल व्यय का प्रमुख भाग प्रशासनिक खर्च के प्रति ही होता है ।

2.4 रिट याचिका में यह भी उल्लेख है कि संरक्षात्मक और सुधारात्मक अभिरक्षा के लिए भिखारियों को गिरफ्तार करने के कर्तव्य से सशक्त कानूनी अधिकारियों को समनुदेशित भूमिकाओं के प्रति उदासीनता, शिथिलता और उत्तरदायित्व की कमी की मनोवृत्ति है । गैर-गिरफ्तार महिला भिखारी पुनर्वास की पहुंच से वंचित हैं जो राज्य से अधिनियम के अधीन स्थापित विशेष संस्थाओं के माध्यम से सुनिश्चित किया जाना

अपेक्षित है । स्वभावतः, शिथिलता की यह मात्रा कल्याण विधान में प्रशंसात्मक, पुनर्वासात्मक उपबंधों की उपस्थिति को अकृत करता है । परिणामतः, संस्थान के विद्यमान होते हुए भी वे मुश्किल से उन विभिन्न व्यक्तियों की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं जो सड़कों पर भीख मांगते रहते हैं ।

2.5 रिट याचिका में आगे यह उल्लेख है कि कानूनी उपबंधों का पालन करने में सरकारी प्राधिकारियों की ओर से भूल के कारण पारदर्शिता की कमी है । भिखारियों को उचित और स्वच्छ आवास, पर्याप्त आवश्यक सुविधाएं और सार्थक पुनर्वास उपलब्ध कराने के लिए दिल्ली और बड़े शहरों में अधिक भिक्षुक संस्थाओं की स्थापना करने की घोर आवश्यकता है ।

अध्याय – 3

संविधान के अनुच्छेद 21 का विस्तार

3.1 संविधान का अनुच्छेद 21 प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के संरक्षण के बारे में है जो इस प्रकार है :–

> " किसी व्यक्ति को, उसके प्राण और दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं । "

3.2 स्पष्ट और साधारण भाषा में प्रारूपित यह अनुच्छेद व्यापक मुकदमेबाजी का विषय है । पिछले 50 वर्षों में इसकी व्याप्ति में वृद्धि हुई है और प्राण और स्वतंत्रता में अब शिक्षा, स्वास्थ्य और यहां तक कि पहाड़ी क्षेत्रों में सड़के भी शामिल हैं । अनुच्छेद विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार के सिवाय प्राण या दैहिक स्वतंत्रता के वंचन का प्रतिषेध करता है । एक अर्थ में,यह संयुक्त राज्य ऑफ अमेरिका के संविधान के पांचवें और चौदहवें संशोधन के समरूप है, जिसका सुसंगत भाग इस प्रकार है :–

> " न तो विधि के सम्यक् प्रक्रिया के बिना प्राण, स्वतंत्रता या संपत्ति से वंचित किया जाए.....और..... न ही कोई राज्य किसी व्यक्ति को विधि के सम्यक् प्रक्रिया के बिना प्राण, स्वतंत्रता या संपत्ति से वंचित करे । "

3.3 ए. के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य[5] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 21 का शाब्दिक और संकीर्ण निर्वाचन किया और नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों से युक्त प्रक्रिया को शामिल करने से इनकार किया । तीन दशक बाद, इस मत को उलट दिया गया और यह अभिनिर्धारित किया गया कि अनुच्छेद 21 के अधीन अनुध्यात प्रक्रिया

---

[5] ए. आई. आर. 1950 एस. सी. 27.

युक्तियुक्तता की कसौटी के अनुकूल होनी चाहिए[6] । ऐसी प्रक्रिया नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप होनी चाहिए । यह मूल अधिकार के व्यापक निर्वचन का एक दृष्टांत है ।

3.4 इस प्रकार, अनुच्छेद 21 न केवल प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण करता है बल्कि उचित प्रक्रिया की भी परिकल्पना करता है ।

3.5 आरंभिक मत यह था कि अनुच्छेद 21 में जीविका का अधिकार सम्मिलित नहीं था । बाद वाले विनिश्चयों में स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया गया है कि प्राण के अधिकार के अंतर्गत जीविका का अधिकार भी है । ओलेगा टेलिस बनाम बाम्बे म्यूनिसिपल कारपोरेशन[7] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त प्राण के अधिकार की परिधि व्यापक और दूरगामी है । इसका मात्र यह अर्थ नहीं है कि प्राण विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के सिवाय उदाहरणार्थ मृत्यु दंड के अधिरोपण और निष्पादन द्वारा निर्वापित या छीना नहीं जा सकता है । यह प्राण के अधिकार का एक पहलू है । उस अधिकार का समान महत्वपूर्ण फलक जीविका का अधिकार है क्योंकि कोई व्यक्ति जीवन के साधन अर्थात् जीविका के साधन के बिना जीवित नहीं रह सकता है । यदि जीविका के अधिकार को प्राण के संवैधानिक अधिकार के भाग के रूप में नहीं माना जाए तो किसी व्यक्ति को उसके प्राण के अधिकार से वंचित करने का आसान तरीका उत्सादन के बिन्दु पर जीविका के उसके साधन से उसे वंचित करना होगा । उस तत्व को ही प्राण के अधिकार का अभिन्न घटक समझा जाना चाहिए जो अकेले जीवन को जीने के लिए संभव बनाता है, उसे एक अलग कर दिया जाए जो जीवन को जीने योग्य नहीं बनाता है ।

3.6 प्रतिष्ठा का अधिकार अनुच्छेद 21 के अधीन प्राण के अधिकार का एक फलक है । व्यक्ति को जांच आयोग द्वारा उसकी सुनवाई के बिना प्रतिकूल टिप्पणी नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अतिक्रमण करता है और

---

[6] मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978) 1 एस. सी. सी. 248.

[7] ए. आई. आर. 1986 एस. सी. 180.

कार्रवाई और उसके परिणाम को भी अस्तित्वहीन बनाता है ।[8]

3.7 निर्धन, दलित और जनजातियों के लिए अनुपाती न्याय के माध्यम से आर्थिक सशक्तीकरण निर्धन, कमजोर वर्ग, दलितों और जनजातियों के प्राण के अधिकार, प्रतिष्ठा और अवसर की समता का अभिन्न भग हैं । गुलाम श्रमिकों की पहचान की जानी चाहिए और अनुच्छेद 39, 41 और 42 के साथ पठित अनुच्छेद 21 के निबंधनानुसार मुक्त और पुनर्वसित किया जाना चाहिए ।[9] महिलाओं को प्रतिष्ठा के साथ और लैंगिक उत्पीड़न के बिना कार्य करने का अधिकार है । व्यक्ति के विकास के मामले में संवैधानिक लक्ष्य को पूरा करने के लिए युक्तियुक्त निवास एक अपरिहार्य आवश्यकता है और अनुच्छेद 21 के अधीन प्राण के अधिकार में सम्मिलित माना जाना चाहिए ।[10] पहाड़ी क्षेत्रों में निवास के लिए सड़क से पहुंच स्वयं जीवन की पहुंच है ।[11]

3.8 राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का गठन मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 के अधीन किया गया है । इस अधिनियम की स्कीम अनुच्छेद 21 और अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन यथापरिकल्पित समेत मानव अधिकारों का संरक्षण और क्रियान्वयन करना है ।

3.9 न्यायालय ने हमेशा दैहिक स्वतंत्रता को मनुष्य जाति का बहुमूल्य स्वत्व माना है और संभव स्वधर्मत्यागी की मुक्ति में अन्तर्वलित सामाजिक कीमत के बावजूद अवैध निरोध को सहने से इनकार किया । यह ऐसा क्षेत्र है जहां न्यायालय विधि के अपेक्षाओं का पालन सुनिश्चित करने में बहुत कठोर और ईमानदार रहे हैं और वहां भी जहां विधि की अपेक्षा का थोड़ा सा भी भंग होता है, न्यायालय निरोधादेश को अभिखंडित करने में नहीं

---

[8] बिहार राज्य बनाम लाल कृष्ण अडवाणी (2003) 8 एस. सी. सी. 361 ; महाराष्ट्र राज्य बनाम पब्लिक कन्सर्न फार गवर्नेन्स ट्रस्ट, 2007 (1) स्केल 72.

[9] बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ, ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 802.

[10] मैसर्स शान्ति स्टार बिल्डर्स बनाम नारायण् खीमालाल टोटेमे, ए. आई. आर. 1990 एस. सी. 630.

[11] हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम उमेद राम शर्मा, ए. आई. आर. 1986 एस. सी. 847.

हिचकिचाती ।

3.10 अनुच्छेद 21 में "दैहिक स्वतंत्रता" पद का व्यापक आयाम है और इसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार के अधिकार आते हैं जो व्यक्ति की दैहिक स्वतंत्रता गठित करते हैं और उनमें से कुछ को सुभिन्न मूल अधिकारों की प्रास्थिति प्रदान की गई है और संविधान के अनुच्छेद 19 के अधीन अतिरिक्त संरक्षण दिया गया है । उक्त पद के अंतर्गत विदेश जाने का अधिकार शामिल है और किसी व्यक्ति को संविधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही इस अधिकार से वंचित किया जा सकता है, अन्यथा नहीं ।[12]

3.11 निवारक निरोध के मामले में व्यक्ति की दैहिक स्वतंत्रता को कम किया गया है । एक बिन्दु से परे, यह अनुच्छेद 21 का अतिक्रमणकारी होगा । मेनका गांधी[13] वाले मामले के निर्णय के पश्चात् ऐसी स्वतंत्रता को वंचित करने वाली विधि उचित, निष्पक्ष और ऋजु होनी चाहिए न कि मनमाना, काल्पनिक या दमनकारी । न्यायालय इस आधार पर कारागार अधिनियम, 1894 की धारा 30(2) के अधीन मृत्यु दंड से दंडित कैदी को काल कोठरी की सजा कायम नहीं रखते कि अनुच्छेद 14, 19 और 21 कारागार के कैदी को भी उतना ही उपलब्ध है और सह-कैदियों के भ्रमण करने, मेल-जोल करने, बातचीत करने और साथ रहने की स्वतंत्रता से सारतः कम नहीं किया जा सकता है ।[14]

3.12 शीघ्र विचारण के अधिकार को उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के मूल अधिकार का भाग रूप या एक आयाम के रूप में अभिनिर्धारित किया गया है ।[15] यह अधिकार अपराधों के किसी विशिष्ट प्रवर्ग तक सीमित नहीं है । शीघ्र विचारण के महत्व को कई मामलों में उच्चतम न्यायालय द्वारा बारबार बल

---

[12] सतवन्त सिंह बनाम पासपोर्ट अधिकारी [1967] 3 एस. सी. आर. 525.

[13] पूर्वोक्त टिप्पण 6

[14] सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन (1978) 4 एस. सी. सी. 494.

[15] हुसैनारा खातून बनाम बिहार राज्य, 1979 क्रि. ला. ज. 1036 (एस. सी.) ; रघुबीर सिंह बनाम बिहार राज्य, 1987 क्रि. ला. ज. 157 (एस. सी.).

दिया गया है । अब्दुल रहमान अंतुले बनाम आर. एस. नायक[16] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने शीघ्र विचारण के अधिकार के वंचन के परिणामों की परीक्षा की और मार्गदर्शक सिद्धांतों के रूप में अनेक प्रतिपादनाएं अधिकथित कीं । इस विनिश्चय को पी. रामचन्द्र राव बनाम कर्नाटक राज्य[17] वाले मामले में सही ठहराया गया । तथापि, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि सभी आपराधिक कार्यवाहियों को समाप्त करने के लिए बाहरी समय सीमा तय करना या विहित करना न तो उपयुक्त है, न ही संभव है और न ही न्यायिकतः अनुज्ञेय है ।

3.13 विचाराधीन कैदियों को अनावश्यक हथकड़ी लगाना अनुच्छेद 21 के प्रतिकूल होगा ।[18] शीला बार्से बनाम भारत संघ[19] वाले मामले में, उच्चतम न्यायालय ने कारागारो में बच्चों के निरोध की भर्त्सना की ।

3.14 शिक्षा का अधिकार भी अनुच्छेद 21 से निःसृत होता है । तथापि, शिक्षा के अधिकार को विनिर्दिष्ट रूप से मूल अधिकार बनाते हुए संविधान (छियासीवां संशोधन) अधिनियम, 2002 द्वारा संविधान में अनुच्छेद 21क अंतःस्थापित किया गया । तथापि, यह आत्यंतिक अधिकार नहीं है । इसकी अंतर्वस्तु और पैरामीटर का अवधारण संविधान के अनुच्छेद 41 में अंतर्विष्ट नीति निदेशक सिद्धांत के आलोक में किया जाना चाहिए । उक्त नीति निदेशक सिद्धांत के संदर्भ में शिक्षा के अधिकार का अर्थ इस प्रकार है :–

(क) प्रत्येक बालक को 14 वर्ष की आयु तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार है ;

(ख)14 वर्ष की आयु के पश्चात्, शिक्षा का उसका अधिकार राज्य की आर्थिक क्षमता और इसके विकास की सीमाओं तक सीमित है ।

---

[16] ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 1701.
[17] (2002) 4 एस. सी. सी. 578.
[18] (2002) 4 एस. सी. सी. 578.
[19] ए. आई. आर. 1986 एस. सी. 1773.

3.15 मालक सिंह बनाम पंजाब राज्य[20] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि एकान्तता का अधिकार अनुच्छेद 21 में अंतर्निहित है । यह अभिनिर्धारित किया गया है कि निगरानी, यदि अंतर्वेधी हो, नागरिक की एकान्तता पर इतनी गंभीरता से अतिक्रमण करता है मानो अनुच्छेद द्वारा गारंटीकृत दैहिक स्वतंत्रता और अनुच्छेद 19(1)(ध) द्वारा गारंटीकृत भ्रमण की स्वतंत्रता के उसके मूल अधिकार का उल्लंघन करता हो । निगरानी अपराध के निवारण के लिए होना चाहिए । अनुच्छेद 21 के निबंधनानुसार एकान्तता के अधिकार की चर्चा विभिन्न अन्य मामलों में की गई है ।

3.16 मि.'X' बनाम हास्पिटल 'Z'[21] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अस्पताल या संबद्ध चिकित्सक द्वारा ऐसी लड़की जो विवाह करना चाहती है, से संबंधित व्यक्तियों को सूचना का प्रकटन कि उसकी प्रेयसी एच. आई. वी (+) से ग्रस्त है, एकान्तता के उसके अधिकार के संदर्भ में अनुच्छेद 21 के अतिक्रमण के अंतर्गत नहीं आता । एकान्तता का अधिकार आत्यंतिक नहीं है ।[22]

3.17 अवैध निरोध और अभिरक्षीय यातना की मान्यता अनुच्छेद 21 के अधीन गारंटीकृत प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के मूल अधिकारों के अतिक्रमण के रूप में दी गई है । आरंभ में, अनुच्छेद 32 या 226 के अधीन रिट याचिकाओं में केवल निम्नलिखित अनुतोष ही मंजूर किए जाते थे :–

(क) निरुद्ध व्यक्ति को स्वतंत्र करने का निदेश, यदि शिकायत अवैध निरोध के बारे में थी ;

(ख) अतिक्रमण के लिए उत्तरदायी अधिकारियों के विरुद्ध जांच करने और कार्रवाई करने के लिए संबद्ध सरकार को निदेश ;

---

[20] (1981) 1 एस. सी. सी. 420.

[21] (2003) 1 एस. सी. सी. 500

[22] मि. 'X' बनाम हास्पिटल 'Z' (1498) 8 एस. सी. सी. 296.

(ग) यदि संबद्ध विभाग द्वारा की गई जांच या कार्रवाई को असंतोषप्रद पाया जाए तो एक स्वतंत्र अभिकरण प्रायः केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा जांच कराने का निदेश ।

3.18 अनुच्छेद 21 के अतिक्रमण के लिए प्रतिकर या "संवैधानिक अपकृत्य" सर्वप्रथम रुदल शाह बनाम बिहार राज्य[23] और बाद में सेवस्तियन एम. होन्ग्र बनाम भारत संघ[24] और भीम सिंह बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य[25] वाले मामलों में उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत किया गया । विधि को नीलावती बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य[26] और डी. के. बसु बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य[27] वाले मामले में स्पष्ट किया गया जिसमें न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि प्रतिकर का अधिनिर्णय मूल अधिकारों के उस उल्लंघन के लिए कठोर दायित्व पर आधारित पब्लिक विधि में उपलब्ध उपचार है जिसको संप्रभु उन्मुक्ति का सिद्धांत लागू नहीं होता ।

3.19 बांधों के निर्माण से हजारों लोग विस्थापित हुए । ऐसे लोगों का पुनर्वास जिन्हें उनके गृहों से बाहर किया गया, अनुच्छेद 21 का तार्किक परिणाम है । पुनर्वास न केवल भोजन, कपड़ा और आश्रय उपलब्ध कराने के बारे में है बल्कि इसके अंतर्गत जीविका और जीवन की आवश्यक सुविधाओं को सुनिश्चित करने के साधनों के पुनर्निर्माण को सहारा देना भी है ।

3.20 हमारा उच्चतम न्यायालय अनुच्छेद 21 के अधीन प्राण के अधिकार के भाग के रूप में स्वस्थ पर्यावरण के अधिकार की अवधारणा को विकसित करने वाला पहला न्यायालय है । पर्यावरण के संरक्षण का राज्य का दायित्व अब सभी देशों में सुस्वीकृत धारणा है । यह धारणा है कि अन्तरराष्ट्रीय विधि में, अपने निजी राज्यक्षेत्रों के भीतर से होने वाले प्रदूषण्

---

[23] (1983) 4 एस. सी. सी. 141.
[24] ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 1026.
[25] ए. आई. आर. 1986 एस. सी. 494.
[26] (1993) 2 एस. सी. सी. 746.
[27] (1997) 1 एस. सी. सी. 416.

के लिए "राज्य उत्तरदायित्व" का सिद्धांत विकसित हुआ है । यह उत्तरदायित्व स्पष्टतः मानव पर्यावरण पर यूनाइटेड नेशन्स कान्फ्रेंस के स्टाकहोम घोषणा (1972) में व्यक्त किया गया जिसका भारत एक पक्षकार है । इस प्रकार, इस तथ्य के बारे में कोई संदेह नहीं है कि टैंकों के संरक्षण और अनुरक्षण का दायित्व सरकार को सौंपा गया है जो क्षेत्र के पर्यावरण के महत्वपूर्ण भाग है ।[28] स्वस्थ पर्यावरण स्वस्थ जीवन के अधिकार का एक अभिन्न फलक है और मानवयोग्य और स्वस्थ पर्यावरण के बिना जीना असंभव होगा ।[29]

3.21 अनुच्छेद 21क के अधीन जीवन के अधिकार के अंतर्गत कर्मकार के स्वास्थ्य के अधिकार का भी निर्वचन किया गया है ।[30] कर्मकार का स्वास्थ्य और शक्ति जीवन के उसके अधिकार का अभिन्न फलक है । मुरली एस. देवरा बनाम भारत संघ[31] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने धूम्रपान का गैर-धूम्रपान वाले लोगों पर हानिकर प्रभाव पर विचार करते हुए सार्वजनिक स्थानों अर्थात् (1) सभा-भवनों, (2) अस्पताल भवनों (3) स्वास्थ्य संस्थाओं, (4) शिक्षा संस्थाओं, (5) पुस्तकालयों, (6) न्यायालय भवनों, (7) लोक कार्यालयों, और (8) रेल समेत सार्वजनिक वाहनों में धूम्रपान के रोक का निदेश दिया । प्रयुक्त भाषा का यह आशय है कि स्थानों की सूची लम्बी है, उदाहरणार्थ, वायु पत्तनों को शामिल नहीं किया गया है यद्यपि विवक्षितः उसे भी शामिल किया गया है ।

3.22 ऐसा अभियुक्त, जो विधिक सहायता के लिए खर्च नहीं दे सकता है, राज्य की लागत पर निःशुल्क विधिक सहायता पाने का हकदार है । यह अधिकार अनुच्छेद 21 के अधीन ऋजु, उचित और युक्तियुक्त प्रक्रिया का भाग है । न्यायालय को अभियुक्त को राज्य के खर्च पर विधिक सहायता के माध्यम से अधिवक्ता के माध्यम से प्रतिनिधित्व किए जाने के उसके

---

[28] इन्टेलेकच्युअल फोरम बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, ए. आई. आर.2006 एस. सी. 1350.
[29] टी. एन. गोदावरमन थिरुमलपाद बनाम भारत संघ (2002) 10 एस. सी. सी. 606.
[30] सी. ई. एस. सी. लिमिटेड बनाम सुभाष चन्द्र बोस (1992) 1 एस. सी. सी. 441.
[31] (2001) 8 एस. सी. सी. 765.

अधिकार को सूचित करना चाहिए । ऐसा करने की असफलता उसके विचारण को दूषित करेगी और उसकी दोषसिद्धि को अपास्त किया जा सकता है ।[32]

3.23 जाली जार्ज वर्गीस बनाम कोचीन बैंक[33] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने ऐसी धन डिक्री के निष्पादन में व्यक्ति को कारागार में, जिसके पास ऋण को अदा करने का आवश्यक साधन नहीं था, रखने के प्रश्न पर विचार किया गया । न्यायालय ने मुद्दे पर विचार करते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 51 से सिविल और राजनैतिक अधिकारों पर अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा को सुमेलित किया । प्रसंविदा के अनुच्छेद 11 में यह उपबंध है कि "किसी व्यक्ति को संविदात्मक बाध्यता को मात्र पूरा करने की असमर्थता के आधार पर कारावास में नहीं डाला जाएगा ।" न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि ऋण चुकाने में मात्र त्रुटि कारागार में व्यक्ति को निरोध करना पर्याप्त नहीं है । अदा करने की मात्र उदासीनता से परे दुर्भाव का कुछ तत्व होना चाहिए । यदि निर्णय-ऋणी के पास एक बार साधन था लेकिन अब साधन नहीं है या यदि उसके पास अब धन है जिस पर अन्य अत्यावश्यक दावे हैं तो उसे कारागार में नहीं डाला जाना चाहिए क्योंकि यह प्रसंविदा के अनुच्छेद 11 और संविधान के अनुच्छेद 21 की भावना का अतिक्रमण होगा ।

3.24 लोकहित वाद ऐसे निर्धन समूह, जो मानवता के अल्प-दृश्यता क्षेत्र के भीतर आते हैं, की पहुंच के भीतर न्याय दिलाने के आशय से विधिक सहायता आन्दोलन की एक रणनीति है । लोकहित वाद न केवल एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के विरुद्ध अधिकारों का प्रवर्तन के प्रयोजन के लिए न्यायालय के समक्ष लाया जाता है जैसा सामान्य मुकदमों में होता है, बल्कि इसका आशय लोकहित का संवर्धन और समर्थन करना है जिनकी यह मांग है कि ऐसे अधिकांश लोग, जो निर्धन, अज्ञान या

---

[32] सुक दास बनाम अरुणाचल प्रदेश संघ राज्य क्षेत्र, (1986) 2 एस. सी. सी. 401.
[33] ए. आई. आर. 1980 एस.सी. 470.

सामाजिक या आर्थिक रूप से अलाभकर स्थिति में हैं, के संवैधानिक या विधिक अधिकारों को अतिक्रमण ध्यान रहित (अलक्षित) और अनिवारित नहीं रहना चाहिए ।

3.25 बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ[34] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि बंधुआ श्रमिकों के रूप में सेवा करने हेतु जबरदस्ती किए जाने पर अपने मानव अधिकारों के अतिक्रमण की शिकायत कर रहे सामाजिक और आर्थिक कमजोर वर्गों के व्यक्तियों की ओर से लोक उद्वेलित संगठन द्वारा लोकहित वाद के माध्यम से अनुच्छेद 32 के अधीन रिट याचिका संधार्य थी । न्यायालय के अनुसार लोकहित वाद प्रतिकूल मुकदमेबाजी की प्रकृति की नहीं है बल्कि यह एक चुनौती है और समुदाय के वंचित और संवेदनशील वर्गों को मूलभूत मानव अधिकारों को सार्थक बनाने के सरकारी और इसके अधिकारियों का एक अवसर है और उन्हें सामाजिक और आर्थिक न्याय के प्रति आश्वस्त करना है जो हमारे संविधान की संकेत धुन है । पत्थर खदानों के निर्धन कर्मकारों की जीवन दशा सुधारने और उन्हें सामाजिक न्याय सुनिश्चत करने के लिए न्यायालय द्वारा सरकारों और अन्य प्राधिकारियों को कतिपय निदेश दिए गए हैं ताकि वे सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता की खुली हवा में सांस ले सकें ।

3.26 यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 24 में किसी कारखाना या खदान या किसी अन्य परिसंकटमय नियोजन में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों के नियोजन का प्रतिषेध है फिर भी यह कठोर वास्तविकता है कि निर्धनता के कारण बच्चे ऐसे नियोजन में लगे हुए हैं । उपरोक्त शीर्षक[35] वाले एक अन्य मामले में उच्चतम न्यायालय ने भारत सरकार को अन्य बातों के साथ-साथ, सभी नियोजनों में 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों के नियोजन के प्रगामी समाप्ति के लिए सिद्धांत और नीति विकसित करने का निदेश

---

[34] (1984) 3 एस. सी. सी. 161.

[35] बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ, ए. आई. आर. 1997 एस.सी. 2218.

दिया ।

3.27 वैचारिकतः, पैतृक सिद्धांत राज्य की अपनी बाध्यताओं के निर्वहन के लिए अपने नागरिको के अधिकारों और विशेषाधिकारों का संरक्षण और उत्तरदायित्व की बाध्यता है । संविधान राज्य के लिए संविधान द्वारा गारंटीकृत अधिकारों को अपने नागरिकों के लिए सुरक्षित करने का अधिदेश देता है और जहां नागरिक अपने अधिकारों का दावा करने और सुरक्षा करने की स्थिति में नहीं हैं वहां राज्य को सामने आना चाहिए और नागरिकों के अधिकारों का संरक्षण करना चाहिए और उसके लिए लड़ना चाहिए । अतःराज्य सक्रिय हो सकता है और प्रभावी रूप से सामने आ सकता है और उनके मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए विपदाग्रस्त शिकार व्यक्तियों के दावों को अपने हाथ में ले सकता है ।[36]

3.28 एक समाचार पत्र में विभिन्न लोक उपक्रमों में भारी संख्या में कर्मचारियों को मजदूरी का भुगतान न किए जाने के बारे में रिपोर्ट छपी । रिपोर्ट में यह भी उपदर्शित था कि कई कर्मचारी भुखमरी के कारण मर गए या गंभीर वित्तीय संकट के कारण आत्महत्या कर ली । उक्त समाचार के आधार पर एक अधिवक्ता द्वारा रिट याचिका फाइल की गई । कपिला हिंगोरानी बनाम बिहार राज्य[37] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने लोकहित के मामले में हस्तक्षेप किया और यह अभिनिर्धारित किया कि पब्लिक सेक्टर कंपनियों के कार्यों का नियंत्रण करने में राज्य द्वारा संवैधानिक कर्त्तव्यों के पालन में असफलता हुई । ऐसी परिस्थितियों में, न्यायालय कारपोरेट आवरण को उठाने में नहीं हिचकिचाएगा जब कारपोरेट व्यक्तित्व को राजस्व या कर्मकार न्याय, सुविधा और हित के प्रतिकूल या लोकहित के विरुद्ध है ।[38]

3.29 निर्धन वादकारियों की सहायता करने के लिए संविधान के अनुच्छेद

---

[36] चरण लाल साहू बनाम भारत संघ (1990) 1 एस. सी. सी. 613.
[37] (2003) 6 एस. सी. सी. 1.
[38] वही, पृष्ठ 19-20.

39क में अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंध है कि राज्य यह सुनिश्चित करने के लिए निःशुल्क विधिक सहायता उपलब्ध कराएगा कि आर्थिक या अन्य निःशक्तताओं के आधार पर किसी नागरिक को न्याय पाने के अवसर से वंचित नहीं किया जा रहा है । उक्त अनुच्छेद और मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का अवलंब लेते हुए, उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अकिंचन अभियुक्त के बचाव के लिए वाद-मित्र उपलब्ध कराना राज्य का कर्तव्य है । न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि उसे प्रतिरक्षा के लिए असमान अनुभव वाला व्यक्ति उपलब्ध कराया जाएगा जैसाकि यह सर्वविदित है कि अधिवक्ता परिषद् का नवयुवक जिसके पास बहुत कम अनुभव है या बिलकुल अनुभव नहीं है, को उसके बचाव के लिए लगाया जाता है इसलिए, यह उचित समय है कि संबद्ध न्यायालय में वकालत कर रहे वरिष्ठ काउन्सेलों को अपने वृत्तिक कर्तव्य के भाग रूप में ऐसे अकिंचन अभियुक्त का बचाव करने के लिए स्वैच्छिकतः आगे आना चाहिए ।[39]

3.30 निर्धनता निर्विवादतः सभी मानव अधिकारों का सर्वाधिक प्रबल अतिक्रमण है और मानव जनसंख्या की अधिकतम संख्या के अस्तित्व के लिए भय गठित करता है । डा. ए. पी. जे. अबुल कलाम ने 10.12.2002 को मानव अधिकार दिवस समारोह में यह कहा :–

> " ऐसे लोग, जो आर्थिक और सामाजिक रूप से निचले स्तर पर हैं, वे लोग जो ऊंचे स्तर पर है, द्वारा मानव अधिकार शोषण की दृष्टि से असुरक्षित हैं । इस शोषण को कम करने का एक तरीका इस विभाजन को कम करना है । हमारे देश में, लगभग 300 लाख लोग गरीबी रेखा के नीचे हैं । प्रगति के पांच दशकों के पश्चात् लोगों की इच्छा ठीक ही बलवती होती जा रही है कि भारत को एक विकसित देश होना चाहिए । यह राष्ट्र के लिए दूसरा स्वप्न

---

[39] किशोर चन्द बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, (1991) 1 एस. सी. सी. 286.

है ।"

3.31 भारत के एक अन्य भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री जैल सिंह ने यह सुझाव दिया था कि आर्थिक असमानता को कम करने और संपत्ति का उचित वितरण सुनिश्चित करने के उपाय के रूप में देश के किसी व्यक्ति के पास एक से अधिक मकान रखने की अनुज्ञा नहीं दी जानी चाहिए । प्रति व्यक्ति मकान की अनुज्ञा देकर अतिरिक्त मकानों को उन जरूरतमंद लोगों को दिया जा सकता है जिन्हें किश्तों में उन्हें भुगतान करने का फायदा दिया जाना चाहिए । विधियों का समान संरक्षण एक औपचारिक घोषणा नहीं है बल्कि परिवर्तनात्मक वास्तविकता है । इस प्रकार, जीवन की ऐसी परिस्थितियां सृजित करना जहां सामाजिक और आर्थिक निर्योग्यताएं आधारभूत सुविधाओं के उपभोग में समान न्याय से वंचित नहीं करती हैं, विधिक प्रणाली का कार्य है । अनुच्छेद 14, 15 और 39-क को एक साथ पढ़ने का कुछ और अर्थ नहीं है, कुछ और अर्थ नहीं है। अनुच्छेद 21 में संरक्षित प्राण के अधिकार का वही व्यापक आवेग, उद्देशिका के सौम्य प्रकाश में देखा जाता है जो सभी नागरिकों को स्वतंत्रता, समान अवसर, भ्रातृत्व और व्यक्ति की प्रतिष्ठा को आश्वस्त करता है । अनुच्छेद 21 के पर्यवलोकन की आवश्यकता नहीं है क्योंकि न्यायिक भ्रम से झूठी प्रत्याशा होती है और न्यायालय को समग्र रूप से देखने से स्थापनों के कलाकारों से भरा होने के कारण तब एक धक्का लगता है जब प्राण के अधिकार पर गंभीरता से बल दिया जाता है और जो लुटे भाइयों के अंतःकरण को व्याकुल करता है । अनुच्छेद 21 जो हमारे देश की एकदम अंतिम आशा के रूप में विकसित हुआ है सभी निष्कपटता से उच्चतम न्यायालय द्वारा सेवित न्यायिक आंदोलन की एक गौरवान्वित विरासत है । इसकी रचना के दो भाग हैं । पहला, मूलभूत अनुमान यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का ऐसा अधिकार है जो पारणीय नहीं है । दूसरा, स्वतंत्रता की इस मूल अवधारणा को विकृत या नष्ट किया जा सकता है यदि ऐसा करने की शक्ति का सम्यक् रूप से विधान बनाया जाए । कोई नरभक्षी

विधान प्राण या दैहिक स्वतंत्रता को मानववाद और यथार्थवाद के सिवाय नहीं छीन सकता ।

3.32 न्यायमूर्ति वी. आर. कृष्णा अय्यर के शब्दों में इस मूल अधिकार द्वारा जो गारंटीकृत किया गया है, मात्र पशुवत अस्तित्व या शाकाहारी जीवन्तता नहीं है बल्कि मानवीय क्षमता को प्रकट करने और सृजनात्मक जीवन की खुशी से भाग लेने का उचित अवसर है ।

3.33 वीना सेठी बनाम बिहार राज्य[40] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय को लगभग दो या तीन दशकों से कारागार में रह रहे मानसिक रूप से बीमार कैदियों के मामलों पर विचार करना था । उनमें से कुछ विकृतचित्त होने के कारण छोड़ दिए गए थे । कुछ विकृत चित्त विचाराधीन कैदियों को काफी पहले स्वस्थ-चित्तता प्राप्त हो गई थी लेकिन उनके विरुद्ध कार्यवाही आरंभ करने के लिए कोई कदम नहीं उठाए गए । औचित्य के बिना उनके द्वारा पहले ही भुगती गई अतिविलम्बित अवधि को ध्यान मे रखते हुए उच्चतम न्यायालय ने उनके सम्बद्ध निवास स्थानों को उनके यात्रा व्ययों को पूरा करने और एक सप्ताह की अवधि के भरण-पोषण के लिए भी आवश्यक निधियां उपलब्ध कराकर तत्काल रिहा करने का आदेश दिया । उपरोक्त मामला लोकहित वाद के माध्यम से फ्री लीगल एड कमेटी, बिहार द्वारा लगभग दो या तीन दशकों से केन्द्रीय कारागार, हजारी बाग में कतिपय कैदियों के अनुचित और अवैध निरोध की न्यायालय का ध्यान आकर्षित करते हए उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को संबोधित एक पत्र द्वारा फाइल किया गया था । इस पत्र को रिट याचिका मानते हुए उच्चतम न्यायालय ने तथ्यों को सुनश्चित करने के प्रयोजन से बिहार राज्य को नोटिस जारी किया और राज्य को प्रति शपथपत्र फाइल करने के अवसर देने के पश्चात् उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यदि निर्धन व्यक्ति को तनिक औचित्य के बिना कारागार में पड़े रहने की

---

[40] (1982) 2 एस. सी. सी. 583.

अनुज्ञा दी जाती है तो विधि का नियम निरर्थक हो जाएगा क्योंकि विधि का नियम मात्र उन लोगों के लिए ही नहीं है जिनके पास अपने अधिकारों के लिए लड़ने का साधन है और प्रायः यथास्थिति बनाए रखने के लिए जो उनके प्रभुत्व को संरक्षित और अनुरक्षित करता है और उन्हें समुदाय के काफी वर्गों का शोषण करने की अनुज्ञा देता है, के लिए ही नहीं है बल्कि यह गरीब और पददलित, अज्ञानी और निरक्षरों के लिए भी विद्यमान है जिनकी संख्या इस देश की मानव शक्ति में काफी अधिक है ।

3.34 उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया कि समाज के कमजोर वर्गों के मूलभूत मानव अधिकारों की संरक्षा और सुरक्षा न्यायालय का पवित्र कर्तव्य है ।

3.35 उच्चतम न्यायालय लीगल एड कमेटी बनाम भारत संघ[41] का मामला विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के अधीन उद्भूत हुआ । उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति, आदि का गठन करने का उपबंध करने के लिए अधिनियम का अध्याय 3 सभी राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों को विस्तारित नहीं किया गया था क्योंकि अधिनियम की धारा 28 के अधीन नियम कई राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों द्वारा विरचित नहीं किए गए थे न ही धारा 29क के अधीन विनियम बनाए गए थे । उच्चतम न्यायालय ने राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों को नियम और विनियम बनाने तथा दो मास के भीतर विभिन्न समितियां गठित करने का आदेश दिया ।

3.36 सुथेन्द्रराजा बनाम राज्य[42] का विनिश्चय राजीव गांधी हत्या मामले में नलनी को अधिनिर्णीत मृत्युदंड के संबंध में न्यायाधीशों के बीच राय में मतभेद प्रतिबिम्बित करता है । न्यायमूर्ति के. टी. थामस ने बहुमत से भागतः भिन्न मत व्यक्त किया और उसके दंडादेश को परिवर्तित किया । बच्चन सिंह बनाम पंजाब राज्य[43] वाला संविधान न्यायपीठ निर्णय जो मृत्यु दंड

---

[41] (1998) 5 एस. सी. सी. 762.
[42] (1999) 9 एस. सी. सी. 323.
[43] (1980) 2 एस. सी. सी. 684.

अधिनिर्णीत करने की व्याप्ति को "विरल से विरलतम मामलों में" की अत्यन्त निर्बंधित परिधि तक संकीर्ण किया और जिसमें आजीवन कारावास के अनुकल्पी कम दंडादेश को निश्चित रूप से वर्जित किया गया है, को निर्दिष्ट करते हुए उन्होंने यह मत व्यक्त किया :–

> " ऐसे मामले में जहां तीन न्यायाधीशों के न्यायपीठ ने निर्णय दिया जिसमें कम से कम एक न्यायाधीश की राय किसी विशिष्ट अभियुक्त के लिए मृत्यु शास्ति की तुलना में आजीवन कारावास देने के पक्ष में है तो मैं यह सोचता हूं कि उस अभियुक्त के संबंध में मृत्यु दंड के आदेश का पुनर्विलोकन करने हेतु न्यायपीठ के पास उचित आधार होगा ।
>
> ऐसा दृष्टिकोण संविधान के अनुच्छेद 21 से संगत है क्योंकि यह एक मानव जीवन को फांसी से बचाने और वहीं दोषी अभियुक्त को जीवन की जंजीरों से मुक्त करने में सहायता करता है । मेरी राय में, यह नजीर बनाने की ठोस प्रतिपादना होगी कि जब तीन न्यायाधीशों में एक न्यायाधीश अभियुक्त को आजीवन कारावास के दंड के अधिमानतः कथित कारणों से मृत्यु शास्ति अधिनिर्णीत करने से विरत रहता है तो उस तथ्य को "विरल से विरलतम मामला जब अनुकल्पी विकल्प निश्चित रूप से वर्जित हो गया है", संकीर्ण परिधि के भीतर न आने वाले मामले के रूप में मानने का पर्याप्त आधार समझा जा सकता है ।
>
> ..... स्पष्टीकारक टिप्पण के रूप में मैं यह जोड़ना चाहता हूं कि तर्क को सुझाव न माना जाए क्योंकि निर्णय की अल्पमत राय इसमें व्यक्त बहुमत राय का स्थान ले सकती है । आजीवन कारावास मृत्यु शास्ति के बीच विकल्प बनाने के क्षत्र में उपरोक्त विचार तब सुसंगत है जब मृत्यु शास्ति अधिनिर्णीत करने की व्याप्ति सिकुड़ कर संकीर्णतम चक्र तक आ गई है और वह भी जब अनुकल्पी कार्रवाई "निश्चित रूप से वर्जित हो गई है ।"

3.37 जहीरा हबीवुल्ला एच. शेख बनाम गुजरात राज्य[44] वाला मामला "बेस्ट बेकरी मामले" के नाम से विख्यात गुजरात में साम्प्रदायिक दंगों के संबंध में है । इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :–

> " विधि के नियम और सम्यक् प्रक्रिया के सिद्धांत गहनतः मानव अधिकार संरक्षण से जुड़े हैं । ऐसे अधिकारों का संरक्षण प्रभावी रूप से किया जा सकता है जब कोई नागरिक न्यायालय का सहारा लेता है .....निष्पक्ष विचारण का वंचितीकरण अभियुक्त के प्रति उतना ही अन्याय है जितना शिकार व्यक्ति और समाज के प्रति है । स्पष्टतः निष्पक्ष विचारण का अभिप्राय पक्षपातरहित न्यायाधीश, निष्पक्ष अभियोजक और शान्ति न्यायिक वातावरण से है निष्पक्ष विचारण का अभिप्राय ऐसे विचारण से है जिसमें अभियुक्त साक्षियों के अनुकूल या प्रतिकूल पक्षपात या पूर्व धारणा या हेतुक जिसका विचारण किया जा रहा है, विलुप्त कर दिया जाता है । यदि साक्षियों को धमकाया जाता है या मिथ्या साक्ष्य देने के लिए मजबूर किया जाता है तो उसका भी परिणाम निष्पक्ष विचारण नही होगा । सारवान साक्षियों को सुनने की असफलता भी निश्चित तौर पर निष्पक्ष विचारण का वंचितीकरण है.....अभियुक्त या अभियोजन को निष्पक्ष सुनवाई का अवसर देने की असफलता विधि की सम्यक् प्रक्रिया के न्यूनतम स्तर का भी अतिक्रमण करती है ।"

3.38 मुरलीधर दयानदेव केसेकर बनाम विश्वनाथ पांडु बोर्ड[45] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :–

> " संविधान का अनुच्छेद 21 प्राण के अधिकार को सुनिश्चित करता है । प्राण के अधिकार को सार्थक और प्रभावी बनाने के लिए इस न्यायालय ने व्यापक निर्वचन किया और इसकी परिधि के

---

[44] (2004) 4 एस. सी. सी. 158.

[45] 1995 सप्ली. (2) एस. सी. सी. 549.

भीतर शिक्षा, स्वास्थ्य, शीघ्र विचारण, समान कार्य के लिए समान वेतन के अधिकार को मूल अधिकार की परिधि के भीतर लाया । अनुच्छेद 14, 15 और 16 विभेद का प्रतिषेध करते हैं और समानता प्रदान करते हैं । सामाजिक गणतंत्र के रूप में संविधान की उद्देशिका आर्थिक असमानताओं को हटाने और समाज के कमजोर वर्गों विशेषकर अनुसूचित जाति अर्थात् दलित और अनुसूचित जनजाति अर्थात् जनजातियों के उचित जीवन स्तर के लिए सुविधाएं और अवसर उपलब्ध कराने और आर्थिक हित का संरक्षण करने तथा "सभी प्रकार के शोषण" से उनकी सुरक्षा करने की मानस में परिकल्पना करती है । 26.1.1950 के पश्चात् कई दिन आये और गए लेकिन गरीबों के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आया और धनी और निर्धन के बीच अन्तर धीरे-धीरे इतना बढ़ गया कि यह जोड़े जाने योग्य नहीं है.....अध्याय 3 के मूल अधिकार मानो निर्धन, समाज के अलाभकर और वंचित वर्गों के लिए संतापी श्रम रह गए हैं और अलाभकारी व्यक्ति अपने मूल अधिकारों का प्रभावी रूप से प्रयोग नहीं कर सकते । अतः, समाज को मूल अधिकारों के अध्याय 3 में वर्णित स्वतंत्रता का उपभोग करने में उनकी सहायता करनी चाहिए ।"

अध्याय – 4

निष्कर्ष और सिफारिश

4.1 निर्धनता को समूल रूप से नष्ट करने के लिए विभिन्न विधियां अधिनियमित की गई हैं, जिनमें से कुछ प्रत्यक्षतः और कुछ अप्रत्यक्षतः उनके बारे में हैं ।

4.2 सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के कुछ उपबंध निर्धन व्यक्ति के संबंध में हैं । सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 33 अकिंचन व्यक्तियों द्वारा वाद, अकिंचन व्यक्ति द्वारा बचाव और अकिंचन व्यक्तियों को निःशुल्क विधिक सेवाओं के बारे में है । अकिंचन व्यक्तियों द्वारा अपील का उपबंध सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 44 के अधीन है ।

4.3 दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 304 कतिपय मामलों में राज्य के खर्च पर अभियुक्त को विधि सहायता हेतु समर्थ बनाती है । दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 33 में अन्य बातों के साथ-साथ जमानत लेने के बजाय व्यक्तिगत बंध-पत्र निष्पादित करने पर अकिंचन अभियुक्त व्यक्ति को रिहा करने का उपबंध है यदि वह प्रतिभूति देने में असमर्थ है ।

4.4 जीविका के साधन के लिए न्यूनतम मजदूरी उपलब्ध कराने हेतु न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948, कर्मकार प्रतिकर अधिनियम, 1923, प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम, 1961, बोनस संदाय अधिनियम, 1965, समान पारिश्रमिक अधिनियम, बंधित श्रम प्रणाली (उत्सादन) अधिनियम, 1976, बाल श्रम (प्रतिषेध और विनियम) अधिनियम, 1986, दास के रूप में किसी व्यक्ति को खरीदने या बेचने, दासों का आदतन व्यौहार करने, वेश्यावृत्ति या अयुक्त मैथुन और विधि विरुद्ध अनिवार्य श्रम के प्रयोजनों के लिए अवयस्कों को बेचने या खरीदने (धारा 370 से 374) का प्रतिषेध करने वाली भारतीय दंड संहिता समेत विभिन्न श्रम विधियां हैं लेकिन गरीबों के भाग्य को उपशमित करने की दिशा वाले कुछ कम ही दृष्टांत हैं । कई अन्य भी हैं । फिर भी, उनका अनिच्छुक क्रियान्वयन समस्या से प्रभावी रूप

से निपटने में हमें काफी पीछे छोड़ देता है ।

4.5 निर्धन और जरुरतमंद व्यक्तियों के पक्ष में संवैधानिक सुरक्षोपायों और राज्य विधायी हस्तक्षेप के बावजूद उनकी सामाजिक-आर्थिक दशा खराब हो रही है । सामाजिक और आर्थिक समानता अब भी उनके लिए मृग-मरीचिका बनी हुई है ।

4.6 हमारा यह मत है कि केंद्रीय और राज्य सरकारें को हमारे उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों को उनकी भाषा और भावना के अनुरूप क्रियान्वयन में प्रमुख प्राथमिकता देनी चाहिए जिससे गरीबों के भाग्य को सुधारा जा सके ।

4.7 हम तद्नुसार सिफारिश करते हैं ।

ह/-
(डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन)
अध्यक्ष

ह/-
(प्रोफेसर (डा.) ताहिर महमूद
सदस्य

ह/-
(डा. ब्रह्म ए. अग्रवाल)
सदस्य-सचिव